कुछ पिटे हुए अनुभव

सुशील जोशी

शिक्षक के हाथों हिंसा का शिकार हुए बच्चे अक्सर भावनात्मक और व्यवहारिक समस्याओं से ताउम्र जूझते हैं। मानसिक तनाव उनके संज्ञानात्मक कौशल और अकादमिक प्रदर्शन पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। स्कूलों में शारीरिक दण्ड और अपमान व्यापक रूप से होता आया है, और आज भी यह तमाम नियम-कानूनों के बावजूद भारत समेत कई देशों में स्कूली शिक्षा का अभिन्न हिस्सा है। लेखक ने इन्हीं मुद्दों पर अपने अनुभव साझा किए हैं जो तीन दशक बाद आज भी उतने ही मौजूँ हैं।

अभी-अभी मेरा सामना ऐसे बच्चे से हुआ जिसकी स्कूल में जमकर पिटाई हुई थी। वैसे यह कोई पहली बार सामना नहीं हुआ था। मैं पहले भी ऐसे बच्चों के सम्पर्क में रहा हूँ। और मात्र सम्पर्क की बात क्यों करूँ, मेरी खुद की भी स्कूल में पिटाई हुई है। और ईमानदारी की बात तो यह है कि मैंने अपने छोटे भाई की बहुत पिटाई की। आज मैं उसके लिए बहुत शर्मिन्दा हूँ और आगे जो भी व्यक्त करूँगा, वह उसी शर्मिन्दगी को कम करने की और अपने छोटे भाई से क्षमायाचना की कोशिश होगी। तो मेरा सामना उस बच्चे से हुआ। गुड्डू! वैसे उसका नाम पंकज है। मैं जिस दिन उससे मिला - जनवरी में - उससे कछ दिन पहले, उसकी इतनी पिटाई हुई थी कि उसके गाल नीले पड़ गए थे। वैसे इससे भी भयानक पिटाई स्कूलों में होती है।

मैंने गुड्डू के नीले गाल नहीं देखे। उसकी माँ से और अन्य लोगों से ही सुना। पर देखने की आवश्यकता नहीं है।

एक बच्चे के लाल-लाल गालों को नीला होते समझ पाना कोई मुश्किल बात नहीं है। और जब ऐसे दृश्य यदा-कदा देखने को मिलें तो ऐसे दृश्य की कल्पना करना बिलकुल मुश्किल नहीं है। गुड्डू से मैंने थोड़ी देर गप्प मारी, उसकी माँ से बातें कीं। मैं पहली बार अन्दर से हिल गया था। मुझे तब से रह-रहकर वह सारी मार याद आती रही जो मैंने खाई और अपने छोटे भाई को मारी।

इस बात पर तो बात की जा सकती है कि स्कूल में मार क्यों

पड़ती है। इसके जितने समाज-आधारित कारण/बहाने हैं, उन पर बात करना अपेक्षाकृत रूप से आसान है। पर मैं व्यक्तिगत बात ज़्यादा करना चाहूँगा, जो मेरी पीड़ा है और जिसे मुझे आपकी पीड़ा बनाना है।

स्कूल में पहली तरह की पिटाई होती है कि मुझे कुछ आया नहीं, कोई सवाल, पहाड़ा, शब्दार्थ वगैरह और मास्टर ने हाथ उठाया और मार दिया। यह आम धारणा है कि स्कूल में पिटाई का प्रमुख (या एकमात्र) कारण यही होता है और यही पिटाई का एक मात्र स्वरूप। पर यह बिलकुल गलत है। यह तो पिटाई का एक बहुत ही नगण्य-सा हिस्सा है। और मैं कहना चाहूँगा कि यह सबसे कम अपमानजनक है।

मेरे साथ ऐसा हुआ कि मेरे पिता सरकारी नौकर थे। दौरे पर जाते थे। मैं उनके साथ खजुराहो चला गया। दो-चार दिन स्कूल से नदारद रहा और जो कुछ सार्थक-निरर्थक पढ़ा था, भूल गया। जब कक्षा में पहुँचा, तो मास्टर ने पूछा कि सातवीं साध्य (प्रमेय) किसको आती है। जैसे हमेशा होता है, किसी ने हाथ नहीं उठाया। इतनी हिम्मत और आत्मविश्वास कहाँ होता है कि खुद शेर की माँद में जाएँ। सबको मालूम है कि बाद में जिसका दुर्भाग्य होगा, शेर उसे खुद ही चुन लेगा। सो शेर ने चुन लिया मुझे। मुझे थोड़ा-थोड़ा याद आ रहा था कि सातवीं साध्य क्या है। मुझे बोर्ड पर खड़ा कर दिया।

अब मैंने ज्यामिति के नियम के अनुसार कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ बोर्ड पर खींचीं और कुछ उलजलूल बातें 'मान लो' का आग्रह किया। यह दो-एक मिनट चलता रहा। मेरा चेहरा तो बोर्ड की तरफ था, इसलिए मुझे कुछ नहीं मालूम। परन्तु सारी कक्षा को मालूम था कि मास्टर के हाथ की वक्र रेखा की छाप अब कहाँ बनने वाली है। बस इसी वक्त वह हादसा हुआ। मुझे अपने बालों पर तनाव महसूस हुआ और मैं तैरने लगा हवा में। फिर धम्म-से गिरा। उसके बाद मेरे

अन्दर की पशु-बुद्धि ने मास्टर का चेहरा देखकर भाँप लिया कि भागना चाहिए। और मैं भागा। आखिर उन्होंने पकड़कर मुझे दो झापड़ लगा ही दिए। वापिस खींचकर कक्षा की कर्मभूमि में लाए और सातवीं साध्य पढ़ाई, फिर चैन की साँस ली। पर मुझे शारीरिक चोट के सिवा कुछ नहीं लगा। मुझे शर्म नहीं आई। मैंने अपमानित महसूस नहीं किया।

मुझे आज तक यह घटना याद है पर कभी भी उन मास्टर के प्रति गुस्सा नहीं रहा। अन्य तरह की पिटाइयों का मुझे उस समय भी गुस्सा रहा और आज भी है। उस समय लगता था कि ये मास्टर को बाद में पत्थर मारूँगा। मास्टर लोग कृपया अन्यथा न लें। हो सकता है तब मेरे भाई को भी ऐसा ही लगा हो। पर इन सातवीं साध्य वाले मास्टर के प्रति मुझे गुस्सा नहीं है। आज मुझे लगता है कि उनके प्रति मुझे गुस्सा नहीं है।

उनके चेहरे पर कुछ था। मुझे सातवीं साध्य सिखा पाने में उनकी असफलता या मेरे अज्ञान पर उनकी हैरानी या और किसी कारण से वे खुद बहुत-बहुत गुस्सा और परेशान थे।

मुझे मारने के समय, मुझे लगा कि वे भी एक पीड़ा में से गुज़रे। वह एक क्षणिक, तीव्र गुस्सा था जिसकी परिणति उस थप्पड़ में हुई। और उसी के साथ वह क्षण बीत गया। वह क्षण बीतने के बाद उन्होंने फिर कोशिश की। इसमें मुझे नीचा दिखाने की कोई साज़िश नहीं थी। इससे ऐसा मत समझिए कि मैं इस तरह से मारने का समर्थक हूँ। पर जब आप मेरे बाद के अनुभव सुनेंगे, तो कहेंगे कि 'साध्य' वाले मास्टर ने तो क्या मारा।

* * *

मेरा एक दोस्त है नरेन्द्र। उसने मुझे पिपरिया के उसके स्कूल की आपबीती बताई। उसे सुनकर इस बात से विश्वास उठ जाता है कि स्कूलों में पिटाई इसलिए होती है ताकि बच्चे ज़्यादा अच्छी तरह सीख सकें। नरेन्द्र से जब भी उसके बचपन की बात हुई, उसने यह किस्सा ज़रूर सुनाया। किस कदर यह उसके ज़हन पर छाया होगा। उसके बचपन को किस तरह इस घटना ने प्रभावित किया होगा। बात किसी भी सन्दर्भ में निकले, नरेन्द्र यह किस्सा ज़रूर सुनाता है। उसके एक मास्टर थे। नरेन्द्र ऐसे नहीं बताता। नरेन्द्र कहता है - "मेरा एक मास्टर था"। खैर।

वे क्या करते थे कि जिस बच्चे को उन्हें प्रताड़ित करना होता, उसे अपने पास बुला लेते और उसकी बाँह के किसी एक स्थान पर चिमटी से (उंगली की चिकोटी) से पकड़ लेते और पन्द्रह-पन्द्रह मिनटों तक धीरे-धीरे (हौले-हौले) सहलाते रहते। और साथ ही बड़ी शान्ति से, परम-सन्तोष के साथ उस बच्चे से व अन्य बच्चों से बात करते जाते। कभी-कभी

मुस्कराकर भी। और बच्चा लगातार चीखता रहता, घुटी-घुटी-सी चीख। बच्चे की पेशाब निकल जाती, तो मास्टर मुस्कराकर उस पर भी अपनी भद्दी टिप्पणी करते।

बच्चा सबके सामने, अपने सब साथियों, हम-उम्रों के सामने इस तरह प्रताड़ित हो और मास्टर लगातार उसकी इस प्रताड़ना पर व्यंग्य करके उनको हँसाने की कोशिश करे, यह कितना अपमानजनक हो सकता है, इसकी कल्पना करना मुझे दुर्भाग्यपूर्ण लगता है। ऐसे दृश्यों, ऐसे अपमानों की कल्पना करने को कहना ही मैं यातना मानता हूँ। मैंने तीन-चार बार नरेन्द्र से पूरा किस्सा सुना है और हर बार मेरी इच्छा हुई है कि उसे चुप रहने को कहूँ। पर हर बार मुझे यह भी लगा कि उस समय तो हम पिटाई से इतने शर्मिन्दा होते थे, इतने अपमानित होते थे कि किसी से बात तक नहीं करते थे, अब कम-से-कम मौका है कि बात करें।

मुझे लगता है कि नरेन्द्र एक बार और मुझे वह बात सुनाएगा तो भी मैं मना नहीं करूँगा। ये मास्टर जब बच्चे का हाथ छोड़ते थे, तो वह स्थान नीला पड़ चुका होता था। मुझे आशा है कि नरेन्द्र के समान ही अन्य बच्चों में भी यह नीलापन मन में उतर गया होगा। क्योंकि यह पीड़ा ही तो हमारी पूंजी है। बहरहाल, बात यह है कि क्या इस प्रकार की प्रताड़ना से सीखने का कोई सिद्धान्त बनता है?

नरेन्द्र का उदाहरण उस श्रेणी में आता है, मैं जिसे द्वितीय श्रेणी कहता हूँ। परपीड़न की श्रेणी। शिक्षक लगातार पूरी प्रक्रिया के दौरान सन्तुष्टि महसूस करता है। उसमें बच्चे के प्रति कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती, उसमें खुद की असहायता का भाव नहीं होता, उसमें कुछ सिखाने की तमन्ना नहीं होती। उसमें कुछ असहाय बच्चों को, आत्म सन्तोष के लिए, दुख देने की बात होती है।

आप भी अपनी-अपनी दास्ताँ सुनाइए कि कितनी बार ऐसी स्थितियों में से गुज़रे हैं। ऐसे मास्टर पर गुस्सा आता है - साथ-ही-साथ

खुद के छोटेपन का, उसके पंजे में कैद होने का एहसास आता है। अधिकांश बार यह स्थाई प्रभाव होता है। अपने कमज़ोर और दूसरे की दया पर होने का स्थाई एहसास। शायद यही इस मार का मकसद भी हो। इसीलिए तो जितना नरेन्द्र तड़पता था, जितना असहायता से छटपटाता था, मास्टर का जोश और सन्तोष बढ़ता था। यह है परपीड़नवादी तरीका या मनोवृत्ति जिसे सेडिज़्म कहते हैं। इसे साद नामक मनोवैज्ञानिक ने प्रतिपादित किया था। इस फ्रांसिसी मनोवैज्ञानिक की मान्यता थी कि दूसरों को पीड़ा पहुँचाने से आनन्द मिलता है।

* * *

और मैंने कई-कई घटनाएँ सुनी हैं जब ऐसी पिटाई मात्र इसलिए हुई है कि बच्चे ने पेशाब की छुट्टी माँगी। पिटाई होते-होते जब पेशाब छूट गई तो छुट्टी का कारण ही समाप्त हो गया। इसमें क्या सिखाया जा रहा था? इसके कई घृणित रूप हैं।

गंदे, एकदम गंदे। कई बार यह यौन उत्पीड़न के रूप में भी सामने आता है। मैंने एक गाँव में लड़कियों को इसे भोगते देखा है। उन्हें स्तनों से पकड़कर ऊपर उठा देना और पटक देना, स्तनों पर चिमटी काटना जैसे घृणास्पद कर्मों को सहना पड़ता था। और शर्मिन्दगी इस कदर कि किससे कहें। मेरे कान को धीरे-धीरे मसला जाता था। और मूल्य यह कि मैं घर पर कहूँ, तो वे इसे मेरी गलती मानेंगे - ज़रूर मैंने कुछ किया होगा। मुझे मुर्गा बना दिया जाता था। दोनों कान पकड़कर। और ऊपर एक चॉक, नहीं तो डस्टर, नहीं तो किताब रख दी जाती थी। पूरी कक्षा की तरफ मुँह करके मुर्गा बनना होता था। पूरे समय। और किताब गिरी, तो मुक्का मारते थे मास्टर। जब सज़ा खत्म होती थी तो पैर काँप रहे होते थे, चेहरा लाल हो जाता था, आँखों में जलन होती थी। चलना मुश्किल हो जाता था। मैं क्या सीख रहा था? और यदि यहीं सन्तोष नहीं हुआ, तो अगले पीरियड के शिक्षक को बता दिया जाता था कि मुझे मुर्गा बने रहना है। हरेक क्षण मन में गुस्से और अपमान के सिवा कुछ नहीं होता था।

मैंने मुर्गा बनकर कभी नहीं सोचा कि मुझे ज़्यादा पढ़ाई करना चाहिए। मैंने सिर्फ यह सोचा कि मेरी बेइज़्ज़ती हुई है, और बदला लेने का मेरे पास कोई तरीका नहीं है। मेरी उंगलियों में पेंसिलें फँसाई गईं, मेरी उंगलियों के जोड़ों पर स्केल और डस्टर से मारा गया, मेरी उंगलियों के बीच पेंसिल फँसाकर, उन्हें पकड़कर दबाया गया, मेरे सिर पर मारा गया।

आज मुझे उन सबके कारण बिलकुल पता नहीं, बस मास्टर की सूरत और अपना दर्द याद है। हो सकता है गांधीजी की आत्मकथा या जन्म तिथि न याद होने पर मार पड़ी हो। और आज याद आता है कि एक

विद्यार्थी को मार पड़ते समय बाकी हँसते न भी हों, तो भी खुद के भाग्य पर खुश ज़रूर हो लेते थे। कई बार तो मास्टर खुद कोशिश करते थे कि जिस बच्चे की पिटाई हो रही है, उसे व्यंग्य का, मखौल का पात्र बनाया जाए। उसकी मूर्खता का बखान किया जाए या यहाँ तक कि दूसरे बच्चों से करवाया जाए। उसका एक अलग ही स्वरूप है जिसे मैं तीसरी श्रेणी में रखता हूँ।

* * *

हमारे एक मास्टर थे चौथी कक्षा में। उनका तरीका अद्‌भुत था। वे खुद हमें नहीं मारते थे। उन्होंने यह काम कक्षा के मॉनीटर को दिया हुआ था। अक्सर वे कक्षा में नहीं आते थे। मॉनीटर को कह देते थे कि कोई भी लड़का बोले, तो मुझे आकर बताना। वे वहीं से सज़ा सुनाया करते थे जिन्हें मॉनीटर क्रियान्वित करता था। यह इतना गंदा होता था। अपने साथी के साथ इतना गंदा रिश्ता। वह जाता और वापिस आकर बोलता कि तुम्हें बैंच पर खड़ा होने को कहा है। यदि खड़े नहीं हुए तो मास्टर से शिकायत करता था। फिर वहाँ पेशी होती थी। वहाँ फिर पिटाई होती थी। वह मास्टर खुद नहीं करते थे। मॉनीटर को कहते थे कि दो थप्पड़ लगा या चार मुक्के मार या पेंसिल उंगली में फँसा वगैरह। और मॉनीटर तुरन्त पूरे जोश से ऐसा करता था। बाकी के शिक्षक भी वहाँ होते। कभी-कभी हँसते। कभी-कभी मॉनीटर को कहते कि ठीक-से नहीं मारा। यह तरीका बहुत घृणास्पद है।

मेरे मन में कई बार आया कि अगले साल मैं मॉनीटर बनूँगा। और ज़ोर-से मारूँगा, साले को। पर आज मुझे दुख है कि मैंने ऐसा सोचा। पर उस समय मुक्के खाते हुए, रोते हुए, हमेशा लगता था कि मॉनीटर बनना है। हालाँकि, हम बाहर आकर हिसाब चुकता कर देते थे पर वह हिसाब सिर्फ शारीरिक चोट का होता था। उस अपमान का बदला तो बाहर मारने से नहीं चुकाया जा सकता। आज समझ में आता है कि वहशीपन के शिकार होने से अपमान नहीं होता और वहशीपन का बदला वहशीपन से नहीं चुकाया जा सकता। पर कितना अद्‌भुत तरीका है कि छात्रों को एक-दूसरे से भिड़ा दो और कितने गंदे दिमाग की उपज होगी यह। मुझे अब उस मॉनीटर पर दया आती है। यह उज्जैन के जैन स्कूल का किस्सा है।

इसी श्रेणी के एक और तरीके को भी मैंने भुगता है। वह रीवा में हुआ था मेरे साथ या हमारे साथ। इस तरीके में बदला चुकाने के लिए मॉनीटर बनना ज़रूरी नहीं था। और यह उससे ज़्यादा गंदा था। हमारे मास्टर शब्दार्थ पूछ रहे थे। लाइन से एक-एक से पूछते थे। जितने लड़कों को नहीं आया, वे खड़े रहते थे। जिस लड़के को आ गया, वह इन सब लड़कों को एक मुक्का मारता था।

मुक्का मारने से पहले मास्टर उसको बता देते थे कि ज़ोर-से मारना, नहीं तो मैं तुमको उतने ही मुक्के मारकर समझाऊँगा कि कैसे मारना है। हमेशा ऐसा होता था कि मारने वाला ज़ोर-से मारने की अदा से धीरे मारने की कोशिश करता। कई बार धोखा देने में सफल हो जाता। जब सफल नहीं हो पाता, तो फालतू की मार खाता। कैसी दुविधा है - और कैसा भयानक तरीका है। और हम धीरे इसलिए नहीं मारते थे कि हमें अपने साथी छात्रों पर कोई दया होती थी। हम तो धीरे इसलिए मारते थे कि हमें मालूम था कि हमें भी सारे शब्दों के अर्थ पता नहीं हैं।

जो शिक्षा व्यवस्था सारे बच्चों को सब कुछ सिखा नहीं सकती, वह सिर्फ सबको बराबर सज़ा का ही तो प्रबन्ध कर सकती है। पर हमें घृणा होती थी। मुझे याद है कि मेरे सहित कई लड़कों ने अन्य को मारने से इन्कार करके मार खाई है। यह अमानवीकरण की प्रक्रिया, यह वहशीपन की प्रक्रिया हमारे अन्दर किसी-न-किसी चीज़ का तो कत्ल कर रही थी। कई बार हमने एक-दूसरे को शब्दार्थ बताए भी, चुपके-चुपके। उसकी पिटाई भी खाई। मुझे याद है, हममें से हरेक का मार खाने और मारने, दोनों का मौका आया था। मझे याद है जब हम में से किसी को मारना होता था, तो हम झिझकते थे। पर अन्ततः खुद को मार पड़ने के डर से हाथ उठाना ही पड़ा।

मैंने थोड़ी देर पहले लिखा कि हम धीरे इसलिए मारते थे क्योंकि हमें अपनी बारी का डर होता था। मुझे अब लग रहा है कि मैंने गलत लिखा। हम कभी भी दूसरों को, खासकर अपने साथियों को मारने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे। पर यह तरीका कितना दर्दनाक है। किसने ईजाद किया और शिक्षा के किस सिद्धान्त के तहत? और क्या सिखाने के लिए? यही सहयोग की भावना और सहकारिता का प्रतिबिम्ब है?

मैं पलिया पिपरिया गाँव के कितने ही युवकों को जानता हूँ जिन्होंने

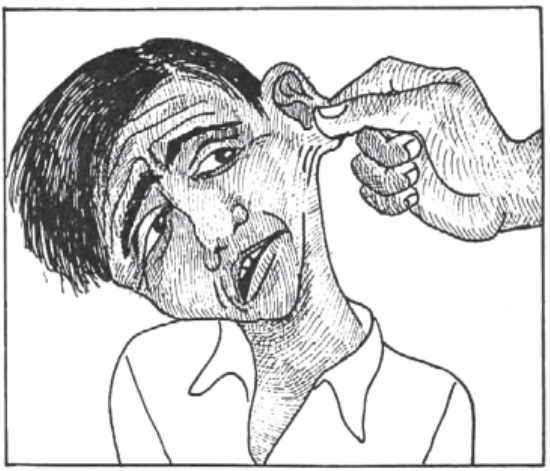

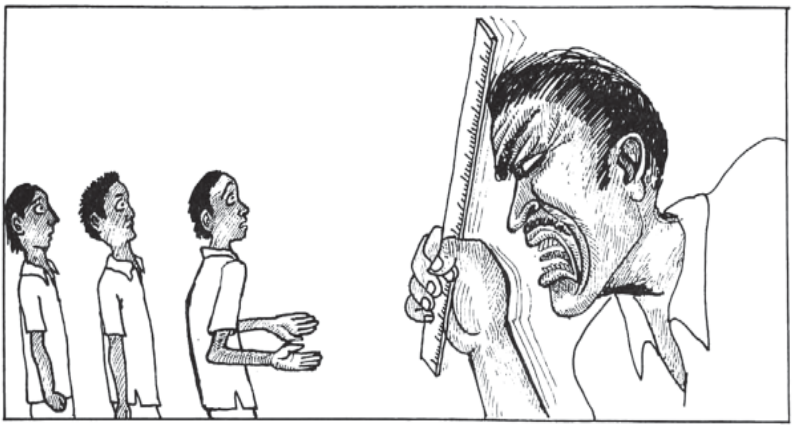

पिटाई के कारण स्कूल छोड़ दिया। एक लड़के को मास्टर ने इतना मारा कि उसका कान उखड़ गया। जब उसके बाप ने स्कूल पहुँचकर शिकायत की तो उसी मास्टर ने गाली-गलौच की और सरपंच ने जुर्माना किया। इसके पीछे ज़रूर यह बात भी थी कि वह बच्चा बसोड़ था और मास्टर-सरपंच, दोनों ब्राह्मण। तो नीची जाति वाले ने कैसे उच्चतम जाति वाले पर टिप्पणी की, यह भी विचारणीय मुद्दा था।

* * *

ये सारी बातें लिखते-लिखते मैंने अपने एक और मित्र कमल सिंह से बात की। उससे मैंने पूछा था कि क्या कभी स्कूल में पिटाई हुई है। उसकी बातें सुनकर मुझे जहाँ एक ओर गहरा दुख हुआ, वहीं दूसरी ओर एक सन्तोष भी मिला कि उन सारी भावनाओं में मैं अकेला नहीं हूँ। उसने बताया कि जब उसके मास्टर ने उसे 'बेमतलब' मारा तो वह स्कूल के दरवाज़े पर ईंट लेकर खड़ा था कि आज निकलने दो। वह तो मास्टर का भाग्य है कि वह उस दिन थोड़ी देर से बाहर निकला। इतनी देर में कमल का धैर्य टूट गया। तो यह गुस्सा मेरे अकेले का नहीं है।

दूसरी बात जो उसने बताई, वह और भी दर्दनाक थी। वह जिस स्कूल में पढ़ता था, वह सहशिक्षा स्कूल था। जब लड़कों की पिटाई होती तो उनका हाथ टेबिल पर रखवाकर रूल से उंगलियों के जोड़ों पर मारा जाता। पर जब लड़कियों की पिटाई करनी होती तो मास्टर उनको अपने पास बुला लेता और शरीर के विभिन्न अंगों पर चिमटियाँ काटना, हाथ लगाना आदि जैसी क्रियाओं से उनको

उत्पीड़ित करता। उस समय भी कमल समझ सकता था कि इनका सम्बन्ध यौन से है।

शायद यह शब्द उसे तब मालूम न रहा हो।

* * *

मेरे कम-से-कम दो अनुभव ऐसे भी हैं जिनमें हम लोगों ने संगठित रूप से इस सबका विरोध किया। पर वह फिर कभी सही। वैसे इनमें से एक घटना मैंने गुड्डू को लिख भेजी है। मेरा एक अनुभव है कि कैसे एक गाँव के प्रायमरी के बच्चों ने संगठित रूप से इसका विरोध किया। पर यहाँ मैं उसमें जाना नहीं चाहता। यहाँ तो मैं सिर्फ यही बात करना चाहता हूँ कि हम सबकी पिटाई हुई है, हम सबको गुस्सा आया है, हम सबने अपमानित महसूस किया है। पर अपना मौका आने पर हम नहीं चूकते। क्यों?

मैं जानता हूँ कि इस सबके पीछे सामाजिक, आर्थिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक कारण व ग्रन्थियाँ हैं। पर फिर भी इसे स्वीकार करें क्या? ऐसी सैद्धान्तिक बहस से तो हर अपराधी को मुक्त किया जा सकता है। मैं उस सब पचड़े में नहीं पड़ूँगा। मैं तो आपसे व्यक्तिगत सवाल करूँगा - क्या आप अपने विद्यार्थियों को मारते रहेंगे या मारना बन्द करेंगे? और इसका जवाब समाज से नहीं, आप से चाहूँगा। और 'मैं नहीं चाहता लेकिन...', किन्तु-परन्तु वाले जवाब न दें कृपया।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्र: कैरन हैडॉक: पिछले पच्चीस सालों से भारत में शिक्षाविद, चित्रकार और शिक्षक के रूप में काम कर रही हैं। बहुत-सी चित्रकथाओं, पाठ्यपुस्तकों और अन्य पठन सामग्रियों का सृजन किया है और उनमें चित्र बनाए हैं।

यह लेख होशंगाबाद विज्ञान बुलेटिन के अंक 26, वर्ष 1988 में प्रकाशित हुआ था।